स्त्री- अस्मिता के सवाल और हिन्दी मीडिया

डॉ. उमेश कुमार शर्मा

सदियों से चली आ रही पितृसत्ता के अंतर्गत स्त्री- जाति पुरुष के अधीन रही है। पुरुष ने सदैव स्त्री के जीवन से संबद्ध विभिन्न आयामों, यथा- उसके जीवन, कार्य-शैली एवं भागीदारी को निर्धारित किया है। स्त्री की सामाजिक पहचान, उसके जीवन से संबंधित महत्त्वपूर्ण निर्णयों को लेने में उसकी क्षमता को पुरुष- समाज अक्सर नजरअंदाज करता आया है। विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक कारणों से स्त्रियों को पुरुषों के बराबर सम्मान नहीं दिया जाता रहा है। 'स्त्री-अस्मिता' इस वर्चस्ववादी व्यवस्था की जकड़ से बाहर निकलने तथा अपनी पहचान बनाने के लिए किये गए अविरल संघर्ष का परिणाम है।

भारतीय समाज में स्त्री का अस्तित्व, उसकी पहचान कैसे व किन मानदंडों के आधार पर तय किया जायेगा...? स्त्री को पहचान या उसके अस्तित्व का मूल्यांकन स्त्री करेगी या पुरुष करेगा या दोनों मिलकर करेंगे, इस प्रश्न पर हमें गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा, क्योंकि एकतरफा मूल्यांकन आदर्शपरक तो हो सकता है, तथापि वास्तविकता से कोसों दूर हो जायेगा।

किसी भी सभ्य समाज की सभ्यता, संस्कार तथा समृद्धि का वास्तविक आकलन उस समाज में स्त्रियों की स्थिति के आधार पर किया जा सकता है। अपनी सामाजिक भूमिका को लेकर अपना मत रखना शुरू कर वहाँ से स्त्री -विमर्श और स्त्री-अस्मिता के सवालों को उठना स्वभाविक है। स्त्री- अस्मिता का प्रश्न रूढ़ियों, परंपराओं जो कि उसके प्रति भेदभाव को उत्पन्न करता है, उसके खिलाफ मुखर अभिव्यक्ति प्रदान करता है। स्त्री-अस्मिता के प्रश्न पर आज यह मांग उठना स्वभाविक है कि क्यों स्त्रियाँ अपने मुद्दों, अवस्थाओं और समस्याओं के बारे में अपनी सोच नहीं व्यक्त कर सकती हैं। स्त्री-अस्मिता के मुद्दों को यदि देखें तो उसके केंद्र में मुट्ठीभर स्त्रियाँ ही स्थान बना पायी है। समाज के कमजोर वर्गों की स्त्रियों का जिक्र बहुत सीमित मात्रा में होता है।

'स्त्री -अस्मिता' एक व्यापक अवधारणा है, जिसके अंतर्गत प्रत्येक स्त्री को उसकी शारीरिक और बौद्धिक क्षमता का विकास, प्रदर्शन और प्रयोग पर पूरी आधिकारिकता प्रदान करने पर बल दिया जाता है। पुरुषवादी वर्चस्व के कारण विकास और शक्ति की दौड़ में स्त्री को जबरन पीछे धकेल देने के लिए सांस्कृतिक एवं सामाजिक ताना-बाना बुना जाता है। समाज की आधी आबादी इस प्रकार की अन्यायपूर्ण व्यवस्था का शिकार है। स्त्रियों को समाज में उनका स्थान प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिए समानता का अधिकार प्रदान किया जाय। स्त्री अस्मिता का विचार स्त्री और पुरुष दोनों को समानता के अवसर प्रदान किये बिना संभव नहीं है। पुरुष प्रधान समाज स्त्री को व्यक्ति के बजाय वस्तु की संज्ञा देता है और उसे इसी भाँति देखता रहा है। आज के परिवेश में शिक्षा, जनसंचार तथा संवैधानिक अधिकार के माध्यम से स्त्रियों में जागरूकता का संचार हुआ है। वे अपने खिलाफ होने वाले तमाम अन्याय के प्रति मुखर प्रतिरोध व्यक्त कर रही हैं। आज वे पिता, भाई और पति की मानसिकता के विरुद्ध अपनी पहचान को कायम करने के लिए संघर्ष करती हुई देखी जाती है। आज के समय में प्रमुखत: आर्थिक आत्म- निर्भरता, सत्ता में भागीदारी, परिवार के महत्त्वपूर्ण फैसलों में स्त्रियों को भागीदारी बढ़ रही है। फिर भी यह अपेक्षाकृत बहुत कम है।

रेखा कस्तवार ने स्त्री विमर्श को परिभाषित करते हुए कहा है- "स्त्री-विमर्श स्त्री के जीवन-संबंधी अधिकारों के उद्घाटन का अवसर प्रदान करता है, परन्तु उसका उद्देश्य साहित्य एवं जीवन के अनछुए अनजाने संदर्भों के उद्घाटन का अवसर उपलब्ध

कराना होता है, उसका उदेश्य साहित्य एवं जीवन में स्थापित के दोयम दर्ज को स्थिति पर आँसू बहाने और यथास्थिति बनाये रखने के स्थान पर उन कारणों को खोज से है जो स्त्री की इस स्थिति के लिए जिम्मेदार है। यह स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ अनवरत संघर्ष है।"[1] इस विमर्श का सार है कि हमारी सामाजिक संरचना में बदलाव के बिना स्त्री के पाले में बेहतरी का आना संभव नहीं है। 'स्त्री विमर्श' स्त्री के स्वयं की स्थिति के बारे में सोचने और निर्णय करने का विमर्श है। जब स्त्री अस्मिता की बात करते हैं तो यह आवश्यक है कि स्त्री और पुरुष दोनों को एक दूसरे का सहयोगी एवं अनुपूरक समझा जाए। उनमें एक दूसरे को नीचे सिद्ध करने को प्रतिद्वंद्विता नहीं होनी चाहिए, बल्कि उत्तरोत्तर श्रेष्ठ और उत्कृष्ट बनने की प्रक्रिया होनी चाहिए। अस्मिता और अस्तित्व का प्रश्न भारत का ही नहीं संपूर्ण विश्व की स्त्रियों के लिए सरोकार रखता है और हमें इसे वर्तमान संदर्भ में देखना चाहिए।

स्त्री, नियमों, मर्यादाओं और वर्जनाओं के बीच अपना अस्तित्व ढूँढ़ रही है। स्त्री को उसकी पसंद का चुनाव एवं निर्णय लेने के अधिकार को निकृष्ट दृष्टि से देखा जाता है। आज महिलाएँ उन क्षेत्रों में, जहाँ पुरुषों का एकाधिकार होता था, में भी अपनी कुशलता तथा ज्ञान की बदौलत अपनी उपस्थिति को दर्ज कर रही हैं। सच में भारतीय मीडिया उनकी भूमिका को उतना उजागर नहीं कर रहा है। आज भी महिलाओं की छवि को पारंपरिक दायित्व सामाजिक बंधनों में बाँधकर देखा जाता है। हम मीडिया में स्त्री की उपस्थिति का अवलोकन करें तो पाते हैं कि उसे यहाँ भी उपभोक्ता की तरह नहीं उपभोग्य की दृष्टि से देखा जाता है। यहाँ सवाल उठता है कि हमें स्त्री को जीवन के सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ने का समान अवसर दिया जाना चाहिए। इसकी शुरुआत परिवार, समाज एवं खासतौर से मीडिया के विभिन्न माध्यमों से होनी चाहिए, क्योंकि आज के समय में व्यक्ति पर मीडिया का सर्वाधिक प्रभाव है।

विशेष रूप से मीडिया का स्त्री की पहचान से संबंधित मुद्दे मुख्य स्थान यदाकदा ही हासिल कर पाते हैं। इसके पीछे मुख्य कारण है कि मीडिया में महिलाओं का प्रतिनिधित्व नगण्य है। महानगरों में महिलाओं के प्रति घटित होने वाली हिंसा- जैसे छेड़खानी, बलात्कार आदि मुख्य खबर बन जाती है, परन्तु महिलाओं के प्रति होने वाले सामाजिक एवं आर्थिक भेद-भावों को लेकर कम ही चर्चा होती है। यदि मीडिया का सही उद्देश्य समझने की कोशिश करें तो दो मुख्य भूमिकाएँ सामने आती हैं। एक किसी घटना या व्यक्ति के सम्बन्ध में यथार्थ बताना। दूसरा सुनने या देखने वाले को मुद्दे के प्रति संवेदनशील बनाना, ताकि वे समस्या के कारणों पर विचार कर उसके सुलझाव में भागीदारी बन सके। अतः आवश्यक है मीडिया सनसनी फैलाने के बजाय रचनात्मक और बौद्धिक स्वरूप को बढ़ावा देने में योगदान करें। एक समय था, जब बड़े -बड़े साहित्यकार पत्र पत्रिकाओं के संपादक हुआ करते थे। इनके लेखन से पाठकों को विश्लेष्णात्मक खबर, एक फीचर के माध्यम से अच्छी खासी मानसिक खुराक मिल जाती थी। अब खबर है, परन्तु वह सब नहीं है। मीडिया की बड़ी भूमिका समाज को सूचना संपन्न करने के साथ ही विचारवान बनाना एवं परस्पर सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण भी है। आज बाजार के प्रभाव को मीडिया में भी देखा जा सकता है। आज संपादक के चयन के आधार में उसको बाजार की समझ महत्त्वपूर्ण होती है। यानि जो जितना अधिक व्यवसाय ला सके, वही अच्छा संपादक माना जाता है। यह ठीक है कि बगैर विज्ञापन के मीडिया अपनी भूमिका को दीर्घकालीन नहीं निभा सकता है, परन्तु इसकी सीमा होनी चाहिए। इधर वैकल्पिक मीडिया के तौर पर ट्विटर, फेसबुक, टेलीग्राम एवं ई- पत्रिकाएँ लोगों के सरकारों को रख रही हैं।

मीडिया में बाजार के सकारात्मक प्रभाव को भी देखा जा सकता है। निजी अनुभवों से बढ़कर सामाजिक भागीदारी में उसकी भूमिका देखी जा सकती है। जैसे निजी अनुभवों से शुरू हुई बात जब व्यापक हितों से जुड़ी हुई हो तो जल्द ही उसमें

सबकी आवाज शामिल हो जाती है। विशेष रूप से हम स्त्रियों की बात करें तो 'हैश टैग', 'मी-टू' को टाइम मैगजीन ने बहुत प्रमुखता दी। इस शारीरिक उत्पीड़न के खिलाफ बोलने का साहस ही नहीं दिया, बल्कि इससे व्यापक स्तर पर समाज में ऐसी फैलती दिखी कि दुनिया भर में इस प्रकार की घटनाओं पर रोक लगनी चाहिए। सोशल मीडिया के द्वारा ही किसी स्त्री या स्त्री शिशु के शारीरिक शोषण पर समाज को आत्म-मंथन की स्थिति में डालने वाला, एक से दूसरे को जोड़ता हुआ वैश्विक स्तर अखबार ने संवाद का प्रसार किया। यह सोशल मीडिया की वजह से ही संभव हो सका। कुछ लोग महिलाओं के प्रति होने वाले उत्पीड़न का ज्वार करने के तरीकों को फैशन कहकर इस सच्चाई पर पर्दा डालने की कोशिश करते देखे जा सकते हैं।

"सरोकार और जनतांत्रिकता को लाने में कभी-कभी मार्केटिंग का तिकड़म भी सामने आता है। जैसे 'पैडमैन' फिल्म के रिलीज होने पर पूरा ट्विटर, इंस्टाग्राम, फेसबुक सेनेटरी पैड के साथ तो सेल्फियों से भर गया। वह क्या माध्यम की लोकप्रियता को भुनाते हुए सामाजिक उत्तरदायित्व का भरम पाले लोगों के बीच बगैर 'स्पॉन्सर' किए अपने उत्पादों को बेचता नहीं। बहुत सारे लोग इस फिल्म को देखना मनोरंजनकारी नहीं, बल्कि सामाजिक जिम्मेदारी समझ बैठते हैं। अब आप सोचे कि यह क्या है? हम कैसे समझे कि कब कोई 'मी- टू' जनतांत्रिक अभिव्यक्ति का उपकरण है और कब लिबेट करती दिखती पैड वाली सेल्फी या किसी प्रचार अभियान का हिस्सा? उसके गणित को समझना इतना मुश्किल नहीं है। किसी ऐसे दौर को उसके उद्देश्य से समझ सकते हैं। असल में जब ऐसा कुछ व्यावसायिक हितों के लिए होता है, चाहे वह फिल्म हो, चाहे किसी वेबसाइट के हिट करने के लिए, तब उनका कोई व्यापक प्रभाव नहीं पड़ता। सोशल मीडिया का वास्तविक प्रभाव यह है कि विचार अभिव्यक्ति भर से किसी को यह एहसास हो सके कि वह गलत था। एक प्रसिद्ध अभिनेत्री द्वारा अपने निजी संबंधों के टूटने पर खुलकर बोलने और आम लड़कियों के मासिक स्राव के बारे में पोस्ट लिखने तक को जहाँ स्वाद मान लिया जाता है, वहाँ इस बात पर तो चर्चा होगी ही। फिर यह भी है कि जहाँ कुछ लोग इसे नगण्य और निरर्थक मसला मानते हैं, वहाँ कई पोस्ट पर कई ऐसे कमेंट होते हैं, जो कहते हैं की ऐसी बातें हमारी संस्कृति को चोट पहुँचाती हैं।"[2]

"बात जहाँ शिक्षा, अधिकार, सम्मान और सुरक्षा की होनी चाहिए, वहाँ प्रतीकों और गोपनीयता के प्रदर्शन को ही सर्वोपरि बना दिया जाता है। जो चीजें रास्ते के छोटे-छोटे टूल्स की भाँति काम में लाने की होती हैं,उन्हें ही वहाँ लक्ष्य मान लिया जाता है। बाजार ने स्त्री के ऊपर जैसे दिखने का दबाव बनाया है। तरह- तरह के ब्यूटी क्वीन एप्स के बीच जैसे हैं, वैसे देखने की बात करना गलत नहीं। पर उसी को एकमात्र सच्चा स्त्रीवाद साबित करने का कोई आग्रह सोशल मीडिया के एक दौर की व्यर्थता के सिवा कुछ नहीं। सब इतना चाहते हैं कि सदा ही लोकप्रियता के बहाने कहीं न कहीं हमारा नाम चल जाए। हमें क्रेडिट मिल जाए वाली महामारी मीडिया के किसी भी ब्लॉग, वेबसाइट, पोर्टल या अखबार में नाम आ जाए, तो ऐसे आंदोलनों का भरम खड़ा करने वालों की टाइम लाइन की पूरी शक्ल बदल जाती है। वह ख़बरों में आ जाए, तब तो पूछना ही नहीं।"[3]

अटल तिवारी "ट्रॉल नामा" शीर्षक से 'हंस' के सितंबर 2018 ई. के अंक में लिखते हैं- "अभिव्यक्ति की आजादी का नया हथियार मुहैया कराने वाले इस माध्यम पर किस तरह से धार्मिक उत्पाद और कठमुल्लापन को बढ़ावा दिया जा रहा है। इसकी बानगी पिछले दिनों फिल्म 'दंगल' में गीता फोगाट की भूमिका निभाने वाली कश्मीर की युवा अभिनेत्री जायरा नसीम को मुख्यमंत्री महबूबा मुफ्ती से मुलाकात के बाद देखने को मिली। मुलाकात के कारण जायरा को सोशल मीडिया पर ट्रोल का शिकार होना पड़ा। धमकियों से परेशान होकर जायरा को फेसबुक पर खुला खत लिख कर माफी मांगनी पड़ी।"[4] अधिकतर मीडिया घराने साठगांठ वाली पत्रकारिता से बाज नहीं आ रहे हैं। इस माहौल में अगर गिनती के पत्रकार तटस्थ होकर सरकार की नीतियों पर सवाल उठाते हैं तथा सरकार में शामिल दल के अनुशांगिक संगठनों की अराजकता दिखाने और

बताने का प्रयास करते हैं तो सोशल मीडिया पर उन्हें ट्रोल का शिकार बनाया जाता है। उनकी माँ, बहन को गालियों से नवाजा जाता है। पत्रकार अगर महिला है तो गालियों की रफ्तार दोगुनी हो जाती है। "बरखा दत्त, सागरिका घोष, राणा अयूब, नेहा दीक्षित आदि महिला पत्रकार इस अभद्रता की शिकार हो चुकी हैं। अभद्रता का शिकार सरकार में शामिल दल और महिला भी हो रही है। इनमें स्मृति ईरानी, प्रियंका चतुर्वेदी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'गुजरात फाइल' जैसी किताब लिखने वाली लेखिका को भी निशाना बनाया गया। कांग्रेस प्रवक्ता प्रियंका चतुर्वेदी को यहाँ तक कह दिया कि आपके साथ बलात्कार कर निर्भया की तरह हत्या कर देनी चाहिए।"[5] आसाम से भाजपा विधायक अंगूर लता डेका का फोटो शेयर करके अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया गया। राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार जीतने वाली अभिनेत्री कंगना रनौत के खिलाफ 'करेक्टर लेस' शब्द का प्रयोग करना बेहद शर्मनाक है। अभद्रता का शिकार हो चुकी आप नेता अलका लांबा को परेशान होकर साइबर क्राइम का मुकदमा तक करना पड़ा। हाल ही में प्रकाशित "बचुअल स्पेस का जनतंत्र" में वह लिखती है- "स्त्री-स्वातंत्र्य इस बात पर टिका है कि पुरुषों के शोषण को कितना तक झेल सकती है। आर्थिक, सामाजिक और पारिवारिक निर्णयों में स्त्री का क्या हिस्सा है, यह मसला विचारणीय है। आर्थिक आजादी मात्र अपने पैरो पर खड़ा होना नहीं है। हर व्यक्तिगत संदर्भ को हम सामूहिक निष्कर्ष का आधार नहीं बना सकते हैं।"[6] यह देखकर स्थिति और भयावह महसूस होती है कि सामान्य सवाल उठाने वाली बुद्धिमता की तार्किकता की कोई सामान्य-सी बात कह देने वाली औरतों को वेश्या कहकर गाली देने वाले और उनमें बलात्कार की धमकी देने वाले हमारे इसी समाज के असली लोग हैं। ऐसे तमाम लोगों के खिलाफ रिपोर्ट करने पर भी उनके खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं होती। ऐसा करते हुए जब स्त्री अपने प्रति होने वाले शोषण को उद्घाटित करती है, तो उसे बीस गालियां दी जाती हैं। उसके शारीरिक रूप रंग से लेकर उसके काम के स्तर पर घृणा से भरी टिप्पणियों के हजारों पोस्ट लिखे जाते हैं। मगर इसका उद्देश्य स्त्री की अभिव्यक्ति को दबाना है।

बहरहाल, स्त्री अस्मिता को उजागर करने में, उन्हें अपने अधिकारों के प्रति संवेदनशील बनाने में हिंदी फिल्मों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन फिल्मों में 'मंडी', 'बाजार', 'भूमिका', 'मिर्च मसाला' आदि प्रमुख सिनेमा है। स्त्री विमर्श को नया आयाम प्रदान करने में 'वाटर', 'फायर', 'अर्थ', 'नो वन किल्ड जेसिका' जैसी फिल्मों से भी विमर्श को नया आयाम दिया है। इन फिल्मों के माध्यम से स्त्रियों की बदलती छवि को बहुत ही संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ- ग्रंथ- सूची :-

1. रेखा कस्तवार- स्त्री जीवन की चुनौतियाँ, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2009 ई., पृष्ठ- 107
2. प्रमोद कुमार- आधी स्त्री- अस्मिता का उभार, अपनी माटी, वर्ष-2 अंक-23 नवम्बर 2016, पृष्ठ- 53
3. राधिकालेख "भारतीय मोडिया का नकारात्मक दृष्टिकोण, साहित्य अमृत, अंक अगस्त, 2015 ई., प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ-19
4. राजेश कुमार व्यास- लोकतंत्र मीडिया एवं बाजार, साहित्य अमृत अंक अगस्त पेज से 2002 ई., पृष्ठ -23
5. "स्पेस का जनतंत्र, सितंबर 2018, अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ- 46-47
6. आदित्य शर्मा- औरत विज्ञापन और बाजार 'स्त्री-काल' अक्टूबर, 2019, पृष्ठ 37

संप्रति : सहायक प्राध्यापक-सह अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
श्री राधाकृष्ण गोयनका महाविद्यालय, सीतामढ़ी, बिहार।